साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 6, अंक : 8 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 14 अक्टूबर से 20 अक्टूबर 2020 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

जलवायु परिवर्तन और सूखे से मंडरा रहा है दुनियाभर के वेटलैंड्स पर खतरा

जलवायु परिवर्तन और सूखे के चलते दुनियाभर के वेटलैंड्स (दलदली भूमि) खतरे में हैं। यह जानकारी एडिलेड विश्वविद्यालय द्वारा किए गए एक नए शोध में सामने आई है। यह शोध जर्नल अर्थ साइंस रिव्यु में छपा है। शोध से पता चला है कि सूखे के दौरान होने वाले कई भौतिक और रासायनिक परिवर्तन वेटलैंड्स की मिट्टी पर गहरा असर डालते हैं। जिनके गंभीर परिणाम हो सकते हैं, जिनमें यदि एक बार बदलाव आ जाए तो उसे फिर से पलटना नामुमकिन हो जाता है।

इस शोध से जुड़े शोधकर्ता ल्यूक मोस्ले ने बताया कि वेटलैंड्स हमारी दुनिया के लिए बहुत मायने रखते हैं। यह जैव विविधता को बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग देते हैं। साथ ही वो बड़ी मात्रा में कार्बन को भी स्टोर कर सकते हैं इस तरह वो जलवायु परिवर्तन की रोकथाम में भी अपना अमूल्य योगदान देते हैं।

यह वैटलैंड्स हमारे लिए कितने महत्वपूर्ण हैं इस बात का अंदाजा आप इसी से लगा सकते हैं कि यह दुनिया के 1.21 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर फैले हैं। जिनसे हर वर्ष करीब 27,57,93,336 करोड़ रुपए (37.8 ट्रिलियन डॉलर) का लाभ होता है। यह लाभ बाढ़ की रोकथाम, खाद्य उत्पादन, जल गुणवत्ता में हो रहे सुधार और कार्बन भंडारण के रूप में होता है।

वेटलैंड्स में सूखे की स्थिति दो कारणों से बनती है पहला जब वातावरण में वास्तविक रूप से सूखे की स्थिति बनती है दूसरा जब उन वेटलैंड्स में आने वाले पानी से ज्यादा निकाल लिया जाता है।

शोध के अनुसार सूखे के कारण गीली मिट्टी पर तेजी से असर पड़ता है और उसके कारण उनके गुणवत्ता पर असर पड़ता है। एक बार जब गीली मिट्टी में ऑक्सीजन की के मात्रा बढ़ने लगती है तो उससे कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण बढ़ जाता है और अकार्बनिक खनिजों में कमी आ जाती है। सूखे के कारण इन वेटलैंड्स में दरार पड़ जाती है और इनमें अम्लता बढ़ जाती है। इसके साथ ही इनसे मीथेन का उत्सर्जन बढ़ जाता है।

जब यह सूखे की स्थिति बहुत लम्बे समय (10 वर्ष या उससे ज्यादा) तक बनी रहती है, तो उसके गंभीर परिणाम सामने आते हैं। जिसके कारण मिट्टी पर गहरा असर पड़ता है । जिसका सीधा असर पानी की गुणवत्ता पर भी होता है। मोस्ले के अनुसार इस विश्लेषण से पता चला है कि हम गीली मिट्टी पर सूखे का क्या असर पड़ेगा और वो उस समय किस तरह व्यवहार करेगी, उसे पूरी तरह नहीं समझ पाए हैं।

बायो मेडिकल वेस्ट के नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं यूपी के अस्पताल

उत्तर प्रदेश में बायो मेडिकल कचरे के प्रबंधन पर न्यायमूर्ति एसवीएस राठौर की अध्यक्षता वाली निरीक्षण समिति की एक रिपोर्ट नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के समक्ष प्रस्तुत की गई।

रिपोर्ट शैलेश सिंह बनाम शीला अस्पताल और ट्रॉमा सेंटर और अन्य के मामले में मूल याचिका संख्या 710/2017 में पारित एनजीटी के आदेश के अनुपालन में थी। मामला उत्तर प्रदेश द्वारा जैव-चिकित्सा अपशिष्ट प्रबंधन नियम, 2016 (बीएमडब्ल्यू नियम, 2016) के प्रावधानों का

पालन न करने से संबंधित है। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि बीएमडब्ल्यू नियम, 2016 में बीएमडब्ल्यू पर नजर रखने की प्रणाली निर्धारित की गई थी - जिसमें सभी रंगीन बैगों पर बार-कोड लगे होने चाहिए। ट्रकों की आवाजाही पर एक ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस) के जरिए नजर रखी जानी चाहिए। हालांकि लखनऊ में शुरु के छोटे से समय अंतराल में इसका उपयोग हुआ, अब कोई भी ऑपरेटर बार-कोडिंग प्रणाली का उपयोग नहीं कर रहा है। जो उत्पन्न आंकड़ों की विश्वसनीयता पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न लगाता है। स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं (एचसीएफ) में बड़े संरचनात्मक कमियां देखी गई हैं। जिसके कारण कई बीएमडब्ल्यू नियमों का अनुपालन नहीं कर रहे हैं। 100 से अधिक बेड की संचालन क्षमता वाले 530 एचसीएफ में से लगभग 452 एचसीएफ में एसटीपी / ईटीपी नहीं है। सरकारी सुविधाओं में भी जिला अस्पतालों और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों (सीएचसी) से युक्त 1027 एचसीएफ में से - 564 एचसीएफ में बायो मेडिकल कचरे को एकत्र करने के लिए उचित जगह नहीं है। जहां तक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों (पीएचसी) का संबंध है, 3620 पीएचसी में से केवल 628 पीएचसी में ही कचरा दबाने के लिए गहरे गड्ढे हैं। जिला अस्पतालों में ईटीपी निर्माण करने की गति बहुत धीमी थी और इस साल केवल 40 जिला अस्पतालों ने ही ईटीपी का निर्माण किया गया है। 2483 एचसीएफ हैं जिन्होंने बीएमडब्ल्यू नियमों के तहत इजाजत नहीं ली है।

नए युग में धरती

हिंद महासागर का समुद्री घोंघा हो सकता है पहला शिकार

यह पपड़ीदार घोंघा हिंद महासागर की तलहटी पर मेडागास्कर के पास तीन जगह पाया जाता है। आईयूसीएन की अपडेटेड रेड लिस्ट में इसे शामिल किया गया है। हिंद महासागर में तीन जगह मिलने वाली घोंघे की यह दुर्लभ प्रजाति पहली समुद्री प्रजाति है जिसे आधिकारिक रूप से डीप सी माइनिंग (समुद्री खनन) के कारण खतरे में घोषित किया गया है। यह प्रजाति हिंद महासागर में स्थित मेडागास्कर के पूर्व में तीन हाइड्रोथर्मल वेंट्स (जलतापीय छिद्र) में पाई जाती है। 18 जुलाई 2019 को आईयूसीएन के विलुप्तप्राय प्रजातियों की अपडेटेड रेड लिस्ट में इस प्रजाति को शामिल किया गया था। हाइड्रोथर्मल वेंट्स समुद्रतल पर वे छिद्र होते हैं जिससे गर्म पानी निकलता है। ये गर्म पानी समुद्र के ठंडे पानी से मिलता है, नतीजतन समुद्र के तल पर कॉपर और मैगनीज जैसे खनिज जम जाते हैं। अतीत में ऐसे खनिज को समुद्र से निकालना मुश्किल और खर्चीला काम रहा है। लेकिन अब तकनीकी मदद से यह आसान हो गया है। नेचर जर्नल के मुताबिक, जिन स्थानों पर घोंघा पाया जाता है, वहां भविष्य में मूल्यवान खनिजों को निकाला जा सकता है। नेचर की रिपोर्ट बताती है कि रिसर्चरों ने घोंघे को रेड लिस्ट में इस आधार पर शामिल किया है कि यह समुद्र तल पर केवल तीन स्थानों पर पाया जाता है और इस पर डीप सी माइनिंग का खतरा मंडरा रहा है। रिपोर्ट में विशेषज्ञों के हवाले से बताया गया है कि डीप सी माइनिंग का केवल एक प्रयास इन घोंघों को विलुप्त कर सकता है क्योंकि इससे समुद्र के छिद्रों को नुकसान पहुंच सकता है। इस वक्त समुद्र में खनन की गतिविधियों पर दुनियाभर में रोक है। संयुक्त राष्ट्र की एजेंसी अंतरराष्ट्रीय सीबेड अथॉरिटी वर्तमान में इस संबंध में दिशानिर्देश बना रही है। ये दिशानिर्देश इस साल बनकर तैयार हो सकते हैं। विशेषज्ञ उम्मीद जताते हैं कि रेड लिस्ट में शामिल हुआ घोंघा शायद खनन कंपनियों को हतोत्साहित कर दे। कम से कम 14 अन्य प्रजातियां भी हाइड्रोथर्मल वेंट्स के पारिस्थितिक तंत्र में पाई जाती हैं। संभव है कि अगली रेड लिस्ट में ये प्रजातियां भी शामिल हो जाएं।

नए युग में धरती- सॉफ्ट शैल कछुआ प्रजाति की अंतिम मादा खत्म

करीब डेढ़ साल पहले विशालकाय यांग्त्जे सॉफ्ट शैल कछुआ (राफेटस स्विनहोई) प्रजाति की आखिरी मादा खत्म हो गई। इससे स्पष्ट हो गया है कि यह प्रजाति भी अवसान पर है। मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार, 12 अप्रैल, 2019 को 90 साल की यह मादा पूर्वी चीन के जियान्गसू प्रांत के सूजो शांगफंग्शान चिड़ियाघर में मर गई। मरने से पहले उसे कृत्रिम गर्भाधान कराने का प्रयास किया गया लेकिन ये प्रयास कामयाब नहीं हुआ। यह मादा 2008 में चांग्सा शहर में मिली थी। इसके बाद उसे चिड़ियाघर में ले आया गया, जहां 100 साल के नर कछुए से उसका मिलन कराया गया। मादा कछुए ने कई बार अंडे भी दिए लेकिन उनमें से किसी भी अंडे से बच्चे नहीं निकले। 2015 से लगातार कृत्रिम गर्भाधान कराने के प्रयास हुए लेकिन उसकी मौत के साथ ये सभी प्रयास धरे के धरे रह गए। मादा कुछए की मौत के बाद इस प्रजाति के केवल तीन नर कछुए बचे हैं। इनमें से 100 साल का एक नर कछुआ सूजो में, दूसरा वियतनाम के डोंग मो लेक में और तीसरा हनोई के बाहरी हिस्सों में स्थित जुआन खान्ह झील में है।

हालांकि अभी तीसरे का लिंग (जेंडर) अज्ञात है। चीन की समाचार एजेंसी शिन्हुआ के अनुसार, विशाल यांग्त्जे सॉफ्ट शैल कछुआ चीन की यांग्त्जे और दक्षिणी चीन से उत्तरी वियतनाम में लाखों साल से बह रही लाल नदी में रहता था। यह चीन की पौराणिक रचना बाईजी के लिए प्रेरणास्रोत रहा है। चीनी मान्यता है कि बाईजी ड्रेगन का छठा बेटा था जो विशाल यांग्त्जे सॉफ्ट शैल कछुए से हूबहू मिलता था। यह मीठे पानी में मिलने वाला दुनिया का सबसे बड़ा कछुआ माना जाता है। यह 100 सेंटीमीटर तक बढ़ सकता है और इसका वजन 100 किलो तक हो सकता है।

प्रजातियों की विलुप्ति सॉफ्ट शैल कछुओं की दुर्दशा की ओर ध्यान खींचती है। लेकिन इसमें और हार्ड शैल कछुओं में क्या अंतर है? भारतीय जूलॉजिकल सर्वेक्षण के वैज्ञानिक बासुदेव त्रिपाठी बताते हैं, नाम से ही दोनों प्रजातियों में अंतर स्पष्ट हो रहा है।

वह बताते हैं, सॉफ्ट शैल कछुओं का ऊपरी हिस्सा मुलायम और मांसल वाला होता है जबकि हार्ड शैल कछुओं का ऊपरी हिस्सा हड्डियों से बना और त्वचा से ढंका होता है। त्रिपाठी आगे बताते हैं कि सॉफ्ट शैल कछुओं को शिकारियों से अधिक खतरा होता है, इसलिए ये आमतौर पर नदी, झील या तालाब के मीठे पानी में पाए जाते हैं। हार्ड शैल प्रजातियां दोनों जगह यानी समुद्र और मीठे पानी के स्रोतों में पाई जाती हैं। त्रिपाठी कहते हैं कि दुनिया का सबसे बड़ा कछुआ न तो सॉफ्ट शैल है और न हार्ड शैल। इसे लेदरबैक के नाम से जाना जाता है। यह साढ़े तीन मीटर ऊंचा और इसका वजन 700-800 किलो तक हो सकता है।

ओडिशा के वाइल्डलाइफ सोसायटी के सचिव बिश्वजीत मोहंती बताते हैं कि मीठे पानी में पाए जाने वाले कछुए समुद्र में मिलने वाले कछुओं से ज्यादा खतरे में हैं। मीठे पानी के कछुओं की आबादी कम है और ये बेहद स्थानीय हैं। वह बताते हैं कि प्रदूषण, रेत का खनन, शिकार और बांध इनके भविष्य के लिए खतरा हैं। त्रिपाठी भारतीय संदर्भ में इसका उदाहरण देकर बताते हैं, गंगा में मिलने वाले सॉफ्ट शैल कछुए (निलसोनिया गेंगेटिका) का मांस के लिए शिकार किया जाता है। चंबल नदी इसकी मुख्य रिहाइश है। नदी में होने वाला रेत का खनन इसे प्रभावित कर रहा है। यह कछुआ नदी किनारे धूप सेंकता है और नदी किनारे ही अंडे देता है। नदी में होने वाला खनन इस काम में बाधा पहुंचाता है। सॉफ्ट शैल कछुए पारिस्थितिक लिहाज से बड़े महत्वपूर्ण हैं। त्रिपाठी के अनुसार, ये मुर्दाखोर होते हैं। यानी ये नदी में बहने वाले मृत शवों को खाते हैं और नदी को साफ रखते हैं। ये मुख्य रूप से प्लवकों को खाकर जिंदा रहते हैं।

जलवायु परिवर्तन से बढ़ रहा है जंगल में आग का खतरा, स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है असर

मोनाश यूनिवर्सिटी द्वारा किए एक नए शोध से पता चला है कि जलवायु परिवर्तन के कारण जंगल में आग लगने की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। जलवायु परिवर्तन न केवल आग लगने के मौसम पर असर डाल रहा है। साथ ही इससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर पड़ रहा है।

दुनिया भर में आग लगने की घटनाएं आम बात होती जा रही है। हाल ही में 2019-20 के दौरान ऑस्ट्रेलिया के जंगलों में भीषण आग लगी थी, जिससे करीब 1,86,000 वर्ग किलोमीटर में फैले जंगल जल गए थे। इसी तरह 2019-20 में ब्राजील के अमेजन में भी बड़े इलाके को आग ने अपनी चपेट में ले लिया था। 2018 और 2020 में पश्चिमी अमेरिका और ब्रिटिश कोलंबिया, साथ ही 2017-18 में कनाडा में लगी आग इसके प्रमुख उदाहरण हैं। अभी हाल ही में तंज़ानिया के जंगलों में भीषण आग लगी है जिस पर अब तक काबू नहीं पाया जा सका है।

रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन के चलते आग लगने के तीन प्रमुख कारकों ईंधन, ऑक्सीजन और आग लगने के स्रोतों को मदद मिल रही है जिससे इनकी घटनाओं में इजाफा हो रहा है।

जंगल की आग से स्वास्थ्य भी हो रहा है प्रभावित

एक तरफ जहां जलवायु में आ रहे बदलावों के कारण बारिश के पैटर्न में लगातार बदलाव आ रहा है। वहीं सूखे की घटनाओं में भी वृद्धि हो रही है। साथ ही वैश्विक तापमान भी लगातार बढ़ रहा है। जिसके परिणामस्वरूप पेड़, पौधे और वनस्पतियां तेजी से आग पकड़ रही है। जिसका असर ने केवल जैव विविधता पर पड़ रहा है साथ ही मानव स्वास्थ्य पर भी इसका असर हो रहा है। एक तरफ जहां जलने से मरने वालों की संख्या में इजाफा हो रहा है वहीं इससे निकला धुआं शरीर के साथ-साथ दिमाग पर भी असर डाल रहा है।

यह शोध न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन में छपा है। इस शोध में पिछले 20 वर्षों के दौरान इस विषय पर छपे अध्ययनों का विश्लेषण किया गया है। जिसके अनुसार इससे फैलने वाले धुंए के चलते आंखों में जलन, कॉर्निया को नुकसान, सांस की बीमारी के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक प्रभाव जैसे अवसाद और अनिद्रा हो सकते हैं। साथ ही बच्चों और बुजुर्गों के स्वास्थ्य पर इसका गंभीर असर पड़ सकता है।

एक ओर जहां जलवायु परिवर्तन, जंगल की आग को और बढ़ा रहा है, वहीं दूसरी ओर इसके चलते ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में भी वृद्धि हो रही है। रिपोर्ट के अनुसार 1997 से 2016 के बीच जंगल की आग से जितना उत्सर्जन हुआ है वो जीवाश्म ईंधन से होने वाले उत्सर्जन के करीब 22 फीसदी के बराबर है। वहीं आग से जिस तरह उष्णकटिबंधीय वनों को नुकसान पहुंचा है उसका असर पृथ्वी की कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने की क्षमता पर पड़ रहा है। जिस वजह से जलवायु को ठंडा रखने की दक्षता पर भी असर हो रहा है।

रिपोर्ट के अनुसार यदि ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन इसी तेजी से जारी रहता है तो सदी के अंत तक जंगल की आग का खतरा दुनिया के 74 फीसदी भूभागों पर पड़ सकता है। हालांकि रिपोर्ट का मानना है कि यदि वैश्विक तापमान में हो रही वृद्धि को यदि 1.5 डिग्री सेल्सियस पर सीमित कर लिया जाता है तो उससे इस जोखिम को 80 फीसदी तक कम किया जा सकता है। जबकि यदि तापमान में हो रही वृद्धि को यदि 2 डिग्री सेल्सियस पर रोक लिया जाता है तो उससे इसके असर को 60 फीसदी तक कम किया जा सकता है।

1.5 डिग्री सेल्सियस के इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए 2030 तक वैश्विक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को 2010 के स्तर से लगभग 45 फीसदी कम करने की जरुरत होगी, जबकि 2050 तक उसे नेट जीरो करना होगा। यह लक्ष्य मुश्किल तो है पर नामुमकिन नहीं है गणना के अनुसार यदि 2020 से 2030 तक हर साल कार्बन उत्सर्जन में 7.6 फीसदी की कमी कर दी जाए तो 1.5 डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

यह सही है कि कार्बन उत्सर्जन में कटौती करना मुश्किल और महंगा है, लेकिन आने वाले समय में इसके जो फायदे सामने आएंगे वो इसकी लागत की तुलना में कहीं ज्यादा होंगे। अकेले जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कटौती करने से पीएम 2.5 और ओजोन के स्तर में कमी आ जाएगी। इससे स्वास्थ्य को जो लाभ पहुंचेगा उसका मूल्य कार्बन उत्सर्जन में कटौती करने की लागत से करीब 1.40 से 2.45 गुना अधिक होगा।

दो दशक में 7348 प्राकृतिक आपदाओं में 12.3 लाख की मौत

संयुक्त राष्ट्र का कहना है कि पिछले 20 वर्षों (2000-2019) से हो रही प्राकृतिक आपदाओं के लिए बहुत हद तक जलवायु परिवर्तन जिम्मेदार है। यूनाइटेड नेशंस ऑफिस फॉर डिजास्टर रिस्क रिडक्शन के अनुसार पिछले दो दशकों के दौरान दुनिया भर में 7,348 प्रमुख आपदाओं की घटनाएं हुईं। इन घटनाओं में लगभग 12.3 लाख (1.23 मिलियन) लोग मारे गए, 420 करोड़ लोग प्रभावित हुए और वैश्विक अर्थव्यवस्था को लगभग 2.97 ट्रिलियन डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ। इसमें एशियाई देश सर्वाधिक प्रभावित हुए।

आंकड़ों के मुताबिक एशिया में 2000-2019 के दर्मियान 3,068 सबसे अधिक आपदा की घटनाएं हुई, इसके बाद अमेरिका में 1,756 और फिर अफ्रीका में 1,192 घटनाएं हुई हैं। वहीं, 1980 से 1999 के मुकाबले सबसे अधिक आपदा की घटनाएं साल 2000 से लेकर 2019 तक दर्ज की गईं। अगर प्रभावित देशों के हिसाब से देखें तो आंकड़ों के मुताबिक चीन कुल 577 घटनाओं के साथ शीर्ष पर है, अमेरिका दूसरे स्थान पर रहा जहां 467 घटनाएं हुई, इसके बाद भारत में 321, फिलीपींस में 304 और इंडोनेशिया में 278 आपदा से जुड़ी घटनाएं दर्ज की गईं।

यूनाइटेड नेशंस ऑफिस द ह्यूमन कॉस्ट ऑफ डिजास्टर्स 2000-2019 नामक एक नई रिपोर्ट में कहा गया कि 1980 से 1999 के दर्मियान 4,212 प्राकृतिक खतरों से 11.9 लाख (1.19 मिलियन) लोगों की मृत्यु हुई थी, जिसमें 300 करोड़ (तीन बिलियन) से अधिक लोग प्रभावित हुए और 1.63 ट्रिलियन डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ था।

रिपोर्ट में कहा गया है कि 2019 में वैश्विक औसत तापमान पूर्व-औद्योगिक अवधि के मुकाबले 1.1 डिग्री सेल्सियस अधिक था। बढ़ता तापमान जलवायु संबंधी आपदाओं में वृद्धि के लिए जिम्मेदार है, जिसमें बाढ़, सूखा, तूफान और जंगल की आग सहित चरम मौसम की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। साथ ही अत्यधिक गर्मी विशेष रूप से घातक साबित हो रही है।

यूनाइटेड नेशंस ऑफिस फॉर डिजास्टर रिस्क रिडक्शन (यूएनडीआरआर) प्रमुख मामी मिजुतोरी ने दुनिया भर की सरकारों पर जलवायु खतरों को रोकने के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाने का आरोप लगाया और आपदाओं को कम करने के लिए बेहतर तैयारी का आह्वान किया। उन्होंने कहा जब हम वैज्ञानिकों द्वारा सुझाए गए उपायों पर कार्रवाई करने में विफल होते हैं, जब वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और आपदा जोखिम में कमी के लिए शुरुआती चेतावनियां दी जाती हैं, तो हम कुछ नहीं करते है और यह हमारे खिलाफ आपदा बनकर खड़ी हो जाती है।

मिजुतोरी ने कहा इस सचाई के बावजूद कि पिछले 20 वर्षों में चरम मौसम की घटनाएं इतनी नियमित हो गई हैं, तब भी केवल 93 देशों ने राष्ट्रीय स्तर पर आपदा जोखिम रणनीतियों को साल के अंत से पहले लागू किया है।

रिपोर्ट में कोरोनोवायरस महामारी जैसी जैविक खतरों और बीमारी से संबंधित आपदाओं को नहीं छुआ गया है, जिसने पिछले नौ महीनों में लाखों लोगों की जान ले ली है और करोड़ों लोग संक्रमित हुए हैं।

रिपोर्ट में बताया गया है कि सदी के अंत तक 6,681 जलवायु से जुड़ी घटनाओं को दर्ज किया गया था। जबकि बाढ़ की प्रमुख घटनाएं दोगुनी से अधिक 3,254 थी, 2,034 बड़े तूफान आए पूर्व की अवधि में जिनकी संख्या 1,457 थी।

विदेशी आक्रामक प्रजाति को संभालने के लिए अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों ने देशों को दिए सुझाव

दुनिया भर में सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को हासिल करने के लिए गंभीर और वैज्ञानिक प्रयासों में सुस्ती जारी है। ऐसे में अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों की एक टीम ने आक्रामक विदेशी प्रजातियों के बेहतर इस्तेमाल और जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र को बचाने के लिए दिशानिर्देश और सुझाव जारी किए हैं। वैज्ञानिकों ने कहा है कि देश की स्थिति-परिस्थिति के हिसाब से उनके सुझावों पर अमल किए बिना एसडीजी लक्ष्य हासिल करना मुश्किल होगा।

यूरोप की परिषद बर्न कन्वेंशन कोड ऑफ कंडक्ट इनवेसिव एलियन ट्रीज़ ऑन ए स्टार्टिंग पॉइंट की आठ सिफारिशों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य सभी विदेशी आक्रामक पेड़ों से होने वाले लाभों को बढ़ाने, तथा उनके खराब प्रभाव को कम करना है।

जैव विविधता की रक्षा के लिए वैज्ञानिकों द्वारा दिशानिर्देश और सुझाव = विदेशी पेड़ों को वरीयता देने के लिए देशी पेड़ों या जो आक्रामक न हो ऐसे विदेशी पेड़ों का उपयोग किया जा सकता है विदेशी पेड़ो के विषय में अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय नियमों का पालन करना आक्रामक प्रजाति के पेड़ों के खतरों के बारे में जानकारी होना वृक्षारोपण स्थल का चयन और स्थल के अनुसार पेड़ों को लगाना आक्रामक प्रजातियों की शीघ्र पहचान और तेजी से इनको रोकने से संबंधित कार्यक्रमों को बढ़ावा देना और लागू करना आक्रामक विदेशी पेड़ों द्वारा उत्पन्न खतरों पर हितधारकों (स्टेकहोल्डर) के साथ जुड़ाव, इससे होने वाले प्रभाव और प्रबंधन के विकल्प देशी और विदेशी पेड़ों पर वैश्विक नेटवर्क, शोध और जानकारी को साझा करना वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए दिशा-निर्देशों में देशी पेड़ों से लेकर विदेशी पेड़ों का उपयोग शामिल है। आक्रामक विदेशी पेड़ों के खतरे के बारे में जागरूक करना और दुनिया भर के रुझानों में हो रहे बदलाव पर विचार करना है। साथ ही देशी व विदेशी पेड़ों के बारे में वैश्विक नेटवर्क और शोध पर जानकारी साझा करना है। यह शोध नवबियोटा पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। वैज्ञानिकों का सुझाव है कि विदेशी वृक्षों को लगाने के दौरान दिशानिर्देशों का पालन किया जाना चाहिए, साथ ही इसमें बरती जाने वाली सावधानियां एक वैश्विक समझौते की दिशा में पहला कदम है। भविष्य में अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय कानून के तहत स्थापित इस तरह की व्यवस्था इन आवश्यकताओं को पूरा करेंगे। इटली के सस्सारी विश्वविद्यालय के प्रमुख शोधकर्ता डॉ. गिउसेप ब्रुंडु ने कहा वैश्विक दिशानिर्देशों के प्रयोग और उनके लक्ष्यों की प्राप्ति से वन जैव विविधता के संरक्षण, स्थायी वानिकी सुनिश्चित करने और सतत विकास की उपलब्धि में मदद मिलेगी। शोधकर्ताओं ने बताया कि विदेशी प्रजातियां - जैसे कि प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा जो 1970 के दशक में पूर्वी अफ्रीका में पशुओं के लिए चारा, लकड़ी प्रदान करने, मिट्टी के कटाव को कम करने और धूल क

तूफान के प्रभाव को कम करने के लिए शुरू की गई थी। दुनिया भर में वृक्षारोपण से जंगलों का 44 फीसदी हिस्सा बनता हैं। शोधकर्ता मेडागास्कर सरकार के 6 करोड़ पेड़ों को लगाने सहित प्रमुख वृक्षारोपण अभियानों की ओर इशारा करते हैं। इनमें विदेशी प्रजातियों को शामिल नहीं किया गया था। इन्हें अक्सर मेडागास्कर में आर्थिक और पारिस्थितिक हितों को संतुलित करने के रूप में देखा जाता है। अन्य इसी तरह की योजनाओं में इटली में लगाए गए 6 करोड़ पेड़ों को शामिल किया गया है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008